पंजाब की लोकनाट्य परंपरा

- डॉ. योजना कालिया

पंजाबी में सामान्यतः 'नाटक' शब्द अंग्रेजी के Drama 'का पर्याय माना जाता है। 'लोक' और 'नाटक' इन दो शब्दों के मेल से 'लोकनाटक' शब्द प्रचलन में आया, जिसका परिचय देते हुए 'लोकयान एवं मध्यकालीन पंजाबी साहित्य' नामक पुस्तक में डॉ. करनैल सिंह खिंद ने कहा है कि- जनसाधारण का ऐसा समूह 'लोक' कहा जाएगा जिसके पास विरासत में मिली परंपराओं का भंडार हो'।[1] लोक नाटक 'शब्द पर बहुत सारे विद्वान अपनी-अपनी राय रखते हैं' जिनकी संक्षिप्त चर्चा से हम इसके स्वरुप को समझने का प्रयास करेंगे। डॉ. श्याम परमार 'लोक-नाटक को नाटक का ऐसा रुप मानते हैं, जिसका संबंध विशिष्ट पढ़े-लिखे समाज से भिन्न जन-साधारण के जीवन से होता है एवं जो परंपरा से अपने क्षेत्र-विशेष के आम लोगों के मनोरंजन का साधन होते हैं।'[2] यहां प्रश्न उठता है कि क्या लोक- नाटक और पढ़े-लिखे लोगों का कोई संबंध नहीं? जो कि किसी भी तरह से उचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि हम सभी इसी तथ्य से परिचित है कि लोक नाटकों में अभिनय करने के साथ-साथ उससे मनोरंजन (रस) ग्रहण करने के लिए भी कोई वर्ग-विशिष्ट का बैरियर नहीं है। डॉ कृष्ण देव उपाध्याय 'लोक-नाटक के लिए गीत, नृत्य और संगीत को त्रिवेणी बताते हैं।'[3] परंतु यह तथ्य भी 100% मान्य नहीं किया जा सकता क्योंकि 'नकल सांग आदि को इन तीनों के अभाव में भी सफलतापूर्वक खेला जा सकता है'।[4] इस तरह कई विद्वानों ने इस विषय पर अपना-अपना मत प्रकट किया है, जिनका विश्लेषण करते हुए 'लोक नाट परंपरा' में डॉ अजीत सिंह औलख ने उन सभी तत्वों की विस्तारपूर्वक समीक्षा की है जो किसी रचना को 'लोकनाटक' बनाते हैं। उनके अनुसारः-

1. वही नाटक लोक-नाटक कहलाता है जो किसी चिर-विकसित परंपरा के अनुसार खेला जाए।

2. लोक-नाटक की दूसरी पहचान उसकी विशिष्ट रंग-शैली है। पंजाब में पांच प्रकार की रंग-शैलियां प्रसिद्ध हैं-1. सांग शैली 2. संगीत शैली 3. रास शैली 4. चमोटा शैली 5. गिद्दा शैली। इन पांचों रंग-शैलियों की अपनी-अपनी निजी विशेषताएं हैं, किसी शैली में नृत्य अनिवार्य है, किसी में नृत्य एवं गीत, तो किसी में किसी विशेष वाद्य यंत्र अथवा वस्तु का प्रयोग किया जाता है जो उस शैली की पहचान होता है।

3. लोक-नाटक का तीसरा प्रमुख तत्व है उसका मंच। लोकनाटक 'घगरी मंच', 'तीर-कमानी मंच', 'टोभा मंच' तथा 'खुले मंच' पर खेले जाते हैं, जबकि साहित्यिक नाटक इन मंचों पर नहीं खेले जाते।

4. लोकनाटक लिखित अथवा अलिखित किसी भी रुप में हो सकते हैं, जैसे सांग एवं लीला नाटक का लिखित रुप भी मिलता है परंतु नकल, गिद्दा आदि की मौखिक परंपरा ही प्रसिद्ध है।

5. लोकनाटक लोक मानस की अभिव्यक्ति के साथ-साथ लोक- संस्कृति के भी दर्शन कराते हैं। इन तत्वों के आधार पर डॉ औलख निष्कर्ष रुप से कहते हैं कि "लोकनाटक लोकयान का ऐसा रुप है जो लोक-परंपरा

अनुसार लोक-रंग शैली के माध्यम से लोक-मंच पर खेले जाते हैं। यह लिखित-अलिखित दोनों रुपों में हो सकते हैं। इनमें रासलीला, रामलीला, नकल, सांग नाटक और गिद्दा नाटक शामिल किए जा सकते हैं।"[5]

पंजाबी लोकनाट्य परंपराः पंजाबी लोकनाटक के कुछ रुप 'लोक नृत्य' में से ही विकसित हुए। लोक नृत्य शायद मानवीय भाषा की उत्पत्ति से भी पूर्व अस्तित्व में आ चुके थे। डॉ. मुलखराज आनंद अपनी पुस्तक 'The Indian Theatre' में लिखतें हैं कि, वह बहुत महत्वपूर्ण दिन होगा जब हमारे आदिबुजुर्ग एकांत अथवा समूह में अपनी चीखों एवं तालियों की ताल पर नाच उठे होंगें।'[6] पंजाब की नृत्य-कला का इतिहास बहुत प्राचीन है। हड़प्पा एवं मोहन जोदड़ो की खुदाई में मिली नृतकों की खंडित प्रतिमाएं इस तथ्य का प्रमाण है आज से 5000 वर्ष पूर्व पंजाब की धरती के निवासी नृत्य और संगीत में पारंगत थे। इसी प्रकार के तालमयी नृत्य में किसी राजा, सरदार या वजीर आदि का सांग खेला जाता होगा। पंजाब में आदिकाल से 'साल' खेलने की प्रथा रही है, जिसका संबंध हड़प्पा संस्कृति से माना जाता है। 'साल की रसम' में 'सांग' और भांडों द्वारा नकल भी शामिल थी। यही तथ्य पंजाब के 'गिद्दे' के लिए भी माना जा सकता है कि गिद्दा भी पंजाब के आदिवासियों का नृत्य होगा जो कि 5000 वर्ष से भी पुराना है। वर्तमान में पंजाब में लोक-नाटकों के निम्नलिखित चार रूप प्रसिद्ध हैं- 1. लीलानाटक 2. सांग नाटक 3. नकल 4. गिद्दा नाटक।

लीला नाटकः ऋषियों-मुनियों, भक्तों एवं अवतारों के जीवन-चरित संबंधित ऐसे नाटक जो रीतिबद्ध अभिनय, सांग, नृत्य, संगीत एवं परंपरागत लोक-रंग शैली में खेले जाते हैं, लीला नाटक कहलाते हैं। यह लीला नाटक परंपरा अनुसार, लोकमंच पर, लोकशैली के माध्यम से खेले जाते हैं। पंजाब में रास-लीला, रामलीला के साथ-साथ प्रहलाद लीला, बाबा बालकनाथ लीला, गुरु वाल्मीकि लीला, गुरु रविदास लीला भी प्रमुख हैं।

पंजाब में राम और कृष्ण की भांति प्रहलाद को भी अवतार माना जाता है, उसकी जीवन लीला पर आधारित नाटक को प्रहलाद लीला कहा जाता है जो कि प्रायः होली एवं रामलीला, रासलीला मंचों पर खेली जाती है। रासलीला का अभिनय करने वाले प्रहलाद लीला को सांग विधि के अनुसार रागों में गा-गाकर पेश करते हैं। प्रहलाद, उसके पिता हिरण्यकश्यप एवं उसकी बुआ होलिका की कथा पंजाब में बहुत प्रसिद्ध है, उसी प्रचलित कथा को रासलीला के अभिनेता गाकर खेलते हैं।

पंजाब में बाबा बालकनाथ एक चमत्कारिक संत के रुप में प्रसिद्ध हैं, जिनको पूजने वाले दो आब के क्षेत्र में सबसे अधिक हैं। इस क्षेत्र के निवासियों के हृदय में बाबा बालकनाथ की श्रद्धा को देखकर रासलीला एवं रामलीला तैयार करने वाले समूहों ने इस संत की लीला भी तैयार की। पहाड़ी इलाकों विशेष तौर पर कांगड़े जिले में बाबा बालकनाथ को बहुत ही प्रसिद्धि प्राप्त है। लोगों में संत के प्रति श्रद्धाभाव और प्रेम के कारण वह उनकी लीला देखने को अति उत्सुक रहते हैं। रासलीला एवं रामलीला की कितनी ही मंडलियां

यह स्वीकार करती हैं कि बाबा बालकनाथ की लीला वाले दिन अन्य दिनों की अपेक्षा चढ़ावा अधिक प्राप्त होता है।

रामलीला, रासलीला को देखकर वाल्मीकि समाज ने अपने गुरु वाल्मीकि के जीवन की कथा को लीला का रुप दिया। पंजाब में इस लीला को प्रारंभ करने में जलंधर निवासी श्री मलूकचंद पागल का बड़ा हाथ है। वर्तमान में गुरु वाल्मीकि के जन्मदिन पर इस लीला को खेलने का प्रचलन है, जो कि मलूकचंद पागल द्वारा रचित है। यह लीला रासलीला की विधि अनुसार नहीं खेली जाती, यह केवल रामलीला के मंच पर सफलतापूर्वक खेली जाती है। जिस प्रकार रामलीलाधारियों ने वाल्मीकि लीला को अपनाया उसी प्रकार गुरु रविदास लीला को रासधारियों ने ग्रहण कर लिया। पंजाब में इस लीला को प्रसिद्ध करने में होशियारपुर निवासी श्री रत्नचंद (MLA) का बहुत योगदान है। इन्होंनें एक रविदास क्लब बनाया, जो कि गांव-गांव जाकर रविदास-लीला का प्रदर्शन करता है। रत्नचंद जी से प्रभावित होकर और क्लब भी बनाए गए। पंजाब की सभी रासधारियों की पार्टियां रविदास-लीला की तैयारी करके रखती हैं। रासविधि द्वारा खेली जाने वाली रविदास-लीला तो अब प्रकाशित रुप में में भी प्राप्त है। यह लीला पूरे वर्ष कभी भी खेली जा सकती है, इसका कोई विशेष समय नहीं है। परंतु रविदास जन्मोत्सव पर इसका विशिष्ट महत्व है।

इन लीलाओं के साथ-साथ जो प्रमुख लीला-नाटक पंजाब में खेले जाते हैं, वह हैं रासलीला एवं रामलीला।

1. रासलीलाः रासलीला उत्तर-प्रदेश का प्रमुख धार्मिक लोकनाट्य रुप है जिसके उद्भव का काल कुछ विद्वान ब्रजभूमि में लगभग 350 वर्ष पूर्व मानते हैं। डॉ बलवंत गार्गी के अनुसार "रासलीला का जन्म ब्रजभूमि में हुआ और यह यह परंपरा लगभग तीन सौ साल से चली आ रही है। डॉगुरदयाल सिंहफल "रास परंपरा भागवत् के बाद पहले ब्रज, फिर हिंदी और फिर पंजाबी में आई मानते हैं।"[7] जबकि डॉ. सोहिंदर सिंह बेदी इस मत से पूरी तरह असहमत होते हुए कहते हैं कि 'पंजाब की रास लीला का संबंध न तो ब्रज-भूमि से है और न ही यह केवल साढ़े तीन सौ साल पुरानी है। पूर्व नानक काल में भी रासलीला पंजाब का लोकप्रिय नाटक था। रासधारिए गांव-गांव घूमकर राम एवं कृष्ण की लीला संबंधित रास डालते'।[8] गुरुनानक देव की 'आसां दी वार' में रासधारियों की कृष्ण रास लीला और प्राकृतिक रास की तुलना की गई है। उस समय रास-लीला करने के लिए व्यावसायिक रासधारियों के समूह विद्यमान थे, जिन्होंनें अपनी रोजी- रोटी के लिए रास-लीला को ही आधार बना लिया था। इन व्यावसायिक रासधारियों के समूह में गुरु-शिष्य परंपरा विद्धमान थी। शिष्य वाद्य बजाते और गुरु नृत्य करते। यह गोपियों, कृष्ण, सीता, राम एवं अन्य प्रचलित राजाओं के सांग करते।

पंजाब एवं राजस्थान में सबसे अधिक प्राचीन धार्मिक रास नाटक जैन मतावलंबियों द्वारा रचे गए। जैन मत भारत का सबसे प्राचीन मत माना जाता है, जिसका संबंध मूलतः पंजाब से ही स्वीकार किया जाता है। जैन रास संबंधित कई ग्रंथ भी रचे गए। डॉ. दशरथ ओझा के अनुसार अंबिका देवी रास, उपदेश रसायन रस, सप्तक्षेत्र रास आदि दसवीं सदी तक लिखे जा चुके थे। जैन धर्म के रास नाटकों की लोकप्रियता से प्रभावित होकर बौद्ध धर्मावलंबियों ने भी लोक नाटक को अपने धर्म-प्रचार के साधन के रुप में अपनाया।

तत्पश्चात हिंदू धर्म ने इसे अपनाया। बौद्ध धर्म के अवसान के बाद हिंदू धर्मावलंबियों ने बौद्ध-नाटय-शालाओं को अपनी धार्मिक आस्थाओं के अनूकूल बनाकर उनमें राम और कृष्ण की कथाएं दर्शायी। पंजाब में यह लीला इतनी प्रसिद्ध हुई कि गांव-गांव में इनका प्रदर्शन हुआ।

कृष्ण-लीला के प्रदर्शन के लिए रासधारियों के समूह निर्मित हुए, जो बिना बुलाए, थोड़े बहुत अन्न-दान के एवज में रात-रात भर रास-लीला का प्रदर्शन करते। 'रास' शब्द जो कि लौकिक-नृत्य के लिए प्रयुक्त होता था, कृष्ण की जीवन-लीला के साथ जुड़कर 'रास- लीला' बन गया था। जहां तक इसके लौकिक स्वरुप का प्रश्न हैरास नृत्य पंजाब का लोकप्रिय नृत्य है जो कि वर्तमान में गिद्दा एवं टिपरी नाच के रुप में प्रसिद्ध हैं। रास लीला की परंपरा का पंजाब में बिल्कुल अलग ही स्वरुप है। आज भी वहां कितने ही व्यावसायिक रासधारियों के दल प्रसिद्ध हैं, जिनके जीविकोपार्जन का यही प्रमुख साधन है। डॉ. अजीत सिंह औलख अपनी पुस्तक 'लोकनाट परंपरा' में लिखते हैं कि 12वीं सदी के बाद मुसलमान शासकों के पंजाब पर कब्जे के बावजूद भी यह परंपरा अत्यंत लोकप्रिय रही, यहां तक कि मुसलमान भी इसके प्रभाव से अछूते नहीं रहे।' 12वीं सदी के पश्चात सांग नाटक परंपरा के विकास का कारण मुख्यतः लौकिक रास नाटक ही थे। वर्तमान में रास नृत्य की लौकिक परंपरा यद्यपि संपूर्ण भारत में लुप्तप्राय है परंतु पंजाब इसका अपवाद है क्योंकि गिद्दा वहां का प्रचलित लोक-नृत्य आज भी है। गिद्दा वास्तव में रास-नृत्य का ही एक रुप है'।[9] पंजाब में रासलीला के दोनों रुप प्रचलित हैं- मंदिर रास लीला एवं रासधारी रास लीला।

मंदिर रासलीलाः सामान्यतः मंदिरों में खेली जाने वाली रास-लीला में व्यावसायिक कलाकार काम नहीं करते वरन् छोटे-छोटे बच्चों को सिखाकर रास-लीला में अभिनय के लिए तैयार किया जाता है। इस तरह की रास-लीला में स्वांग (सांग) पर ही अधिक बल रहता है। दो बच्चों को कृष्ण और राधा के स्वांग के लिए प्रशिक्षित किया जाता है, शेष बच्चे गोपियों का रुप धरते हैं। अधिकांशतः यह लीला बाल- कृष्ण की लीलाओं से ही संबंधित होती हैं। उनका माखन चुराना, गोपियों के साथ विविध लीलाएं करना और माँ यशोदा के साथ मधुर संभाषण, जिनमें कृष्ण के बाल-स्वरुप की विविध कथाएं प्रचलित हैं का अभिनय किया जाता है। अभिनय के साथ साथ-साथ नृत्य और संगीत का सुंदर संयोजन इन लीलाओं की विशिष्टता है। इस तरह की रास-लीलाएं पंजाब के मंदिरों में समय-समय पर आयोजित की जाती हैं, विशेष तौर पर जन्माष्टमी के समय अथवा जब मंदिरों में श्रीमद भागवत कथा का पाठ रखा जाता है तो सुबह तो कथा-वाचन को सप्ताह भर किया जाता है और शाम के समय रास-लीला आयोजित की जाती है।

रासधारी रासलीला - व्यावसायिक रासधारियों द्वारा खेली जाने वाली रासलीला को रासधारी रासलीला कहा जाता है। प्रायः यह गांव और कस्बों में खेली जाती है। रासलीला के कलाकारों ने अपनी इसी कला को जीविका का साधन बना लिया। क्योंकि विशिष्ट पर्वो जैसे जन्माष्टमी आदि पर ही ये अपनी कला का प्रदर्शन करके ही पूरा वर्ष नही चला सकते थे इसलिए उन्होंने प्रतिदिन कहीं न कहीं रासलीला के प्रदर्शन करने प्रारम्भ कर दिए। परिणामस्वरूप इस कला में नित- नए प्रयोग उनकी ओर से किए जाने लगे और व्यावसायिक रासलीला एवं मंदिर रासलीला की शैलियों में खास अंतर आ गया। वैसे तो पंजाब के ग्रामीण

इलाकों में खास अवसरों पर रासलीला के मेले भी लगाए जाते हैं- महित्तपुर, नूरमहल, फतेहगढ़ चूढ़ियां, दीना नगर, करतारपुर आदि के रासलीला मेले बहुत प्रसिद्ध हैं।

पंजाब में रासलीला दो प्रकार की रंग-शैलियों में खेली जाती है- (क) रास-रंग शैली तथा (ख) सांग-रस शैली

(क) रास-रंग शैलीः यह कृष्ण-लीला खेलने की वह शैली है, जिसमें नृत्य एवं रासक की विधियों को अपनाया जाता है, इसीलिए इसे रास-रंग शैली कहा जाता है। रास-नृत्य भारत का प्राचीन लोक-नृत्य है, जिसका संबंध आदिवासी समाज के साथ जोड़ा जाता है। कहा जाता है कि जब जंगली लोग कोई शिकार करके आते थे अथवा किसी शत्रु पर विजय प्राप्त कर लेते थे तो वो खुशी की अभिव्यक्ति के लिए गोल घेरा बनाकर नृत्य करते थे, नृत्य करते हुए बीच-बीच में हुंकार अथवा गरजने जैसी ध्वनियां निकालते थे, जो कि उनकी प्रसन्नता, विजय और खुशी का प्रतीक हुआ करती थी, इसी गर्जना को रास कहा जाता था। डॉ डी. आर. मक्कड़ मानते हैं कि रास शब्द की उत्पत्ति 'रस' धातु से नही बल्कि यह 'शब्द रास' धातु से निकला है, जिसका अर्थ जोर से चीखना। उनके अनुसारः "rasin thus not to be a derived from (रस) but from रास a root which means to cry which may refer to in very primitive form of this dance when in proportion of music and artistic movement may not have been stirea tistic and when it must have been practised as wild dance"[10]

डॉ दशरथ ओझा भी 'रास' शब्द का संबंध संस्कृत से न मानकर लोक-भाषा से मानते हैं, जिसे आगे चलकर संस्कृत वालों ने भी अपना लिया।"[11]

भाई काण सिंह नाभा ने भी 'गुरु-शब्द रत्नाकर, महानकोश में 'रास' शब्द का अर्थ 'शब्द करना अर्थात शोर करना अथवा तीव्र ध्वनि करना या विलाप के संदर्भ में स्वीकार किया है'।[12]

जहां तक पंजाब में रास का संबंध है, इसका रुप प्रधानतः लौकिक ही था, केवल कृष्ण से संबंधित नाटक रास ही रास नहीं थे, बल्कि 'रास-लीला' शब्द तो चौथी शताब्दी के पश्चात् कृष्ण-लीला के लिए प्रयोग किया जाने लगा। जो नाटक रास-नृत्य की सहायता से, उसी प्रकार की मंचीयता के साथ-साथ अभिनीत किए जाते थे, उन्हें 'रास-नाटक' अथवा 'रासक' कहा जाता था। पंजाब में 'संदेश रासक' एवं 'हनुमान-नाटक' आदि इसी शैली में रचे गए। इस प्रकार के नाटकों का प्रारम्भ मंगलाचरण से होता था, तत्पश्चात अराध्या-देव की आरती की जाती थी, तब सभी कलाकार मिलकर रास-नृत्य प्रारंभ करते थे, जो कि आराध्य देव के समक्ष ही संपन्न किया जाता था। जब ऐसा समझा जाता था कि आराध्य इस भक्तिपूर्ण नृत्य से संतुष्ट एवं प्रसन्न है तब नाटक आरंभ किया जाता था। एक व्यक्ति नाट्य- पाठ उच्च स्वर में करता और सभी कलाकार उस पाठ के अनुसार अभिनय करते, अभिनेता अपने मुंह से कुछ नहीं बोलते थे, यह तो बस कठपुतली की तरह स्वामी के निर्देश के अनुसार अभिनय एवं नृत्य करते जाते हैं। सांग नाटक के प्रसिद्ध होने पर इस शैली से कृष्ण-लीला के खेलने का प्रचलन बहुत कम हो गया।

(ख) सांग-रंग शैली: सांग-शैली की लोकप्रियता से प्रभावित होकर कृष्ण-लीला भी सांग-शैली में खेली जाने लगी। इसमें सभी कलाकार अपने संवाद स्वयं बोलते थे। संगीत की दृष्टि से किसी विशिष्ट राग को

हारमोनियम इत्यादि यंत्रों के द्वारा बजाया जाता और अभिनेता उसी की सहायता से गाते हुए अभिनय करते। आजकल पंजाब में रास-लीला की यही शैली प्रसिद्ध है।

रामलीलाः संपूर्ण भारत में जिस लीला को विविध रुपों में खेला जाता है, वह है भारत के आदर्श पुरुष राम के जीवन के आधार पर रची गई कथा की लीला, जिसे 'रामलीला' के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त है। रामलीला भारत के बाहर जावा, बाली, लंका में भी पुरातनकाल से ही खेली जाती है। डॉ रमा अपनी पुस्तक 'हिंदी रंगमंच' में रामलीला का परिचय इस प्रकार देती हैं- "उत्तर भारत का सबसे प्राचीन और लोकप्रिय नाट्यरुप रामलीला है। इसकी कई शताब्दियों की परंपरा है और नाटकीय तत्वों और व्यवहारों की दृष्टि से यह नाट्यरुप अत्यंत समृद्ध है। रामलीला की कई क्षेत्रीय शैलियां है।... 'उत्तर-भारत का शायद कोई ऐसा ग्राम या नगरवासी होगा जिसने रामलीला देखी न हो या कम से कम उसके संबंध में सुना न हो। यह समूचे समुदाय की कलात्मक, धार्मिक और रुढ़िपरक अभिव्यक्ति है, जिसका प्रचार और लोकप्रियता सभ्यता के नवीन प्रसार के साथ भी कम नही हुई है"[13]

भारतीय समाज में रामलीला रामकथा का लोक मंच है जबकि रामकथा की शास्त्रीय मंचों पर अभिनीत होने की वृहद् परंपरा यहां विद्यमान है।

समान्यतः रामलीला तुलसीदासकृत' रामचरितमानस' पर आधारित मानी जाती है। परंतु डॉ अजीत सिंह औलख का मत है कि 'पंजाब में रामलीला इससे बहुत पहले से खेली जाती है। 12वीं सदी की रचना 'संदेश रासक' में मुल्तान में विविध रुप धरकर लीलाएं खेलने का वर्णन मिलता है, जिसमें रामायण की कथा का भी संकेत मिलता है। जिससे ज्ञात होता है कि मुस्लिम शासकों के आगमन से पूर्व ही पंजाब में रामायण की कथा और रामलीला प्रसिद्ध थी। गुरुनानक देव ने भी 'आसां दी वार' में सीता एवं राम का रुप धारण कर लीला का संकेत दिया है'।[14] इस प्रकार डॉ अजीत सिंह औलख इस तथ्य को अस्वीकार करते हैं कि रामलीला का आरंभ गोंसाईं तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' के माध्यम से किया। पंजाब में खेली जाने वाली रामलीला का संबंध वे उत्तर-प्रदेश से नहीं मानते बल्कि उनका मानना है कि वाल्मीकि रामायण (जिससे प्रेरित होकर तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की रचना की थी) की रचना ही पंजाब में हुई। यही हिंदू धर्म की अनादि परंपरा मानी जाती है। इसी संदर्भ में डॉ अजीत सिंह एक दंत कथा का भी जिक्र करते हैं जिसके अनुसार-त्रेता युग में जब राम बनवास काट रहे थे तब अयोध्या में उनकी प्रजा और परिजन राम के बाल रूप के स्वांग खेलकर अपने वियोग का समय काट रहे थे। इस कथा के अनुसार रामकथा के अभिनय की परंपरा का जन्म यहीं से हो गया था। इस कथा की प्रामाणिकता यद्यपि संदिग्ध है परंतु इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि भारत में रामायण का आख्यान सदियों से चला आ रहा है। जो विद्वान गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस को रामलीला का आधार मानते हैं उनका ध्यान डॉ अजीत सिंह तुलसीदास से पूर्व काशी में मेघा भगत की रामलीला की ओर ले जाते हैं, जो कि रामचरितमानस पर आधारित नहीं थी, बल्कि मेघा भगत की रामलीला का आधार वाल्मीकि रामायण था'।[15]

विधियां: पंजाब में तीन ढंग से रामलीला खेली जाती है-

(क) रास विधिः ढोलक एवं मजीरों की धुन पर रामचरितमानस का सस्वर पाठ करते हुए, पात्रों द्वारा अभिनय और संवाद के सम्मिश्रण से रास-विधि द्वारा रामलीला का मंचन किया जाता है। इस विधि का प्रयोग उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान में प्रचलित हैं। इन्हीं क्षेत्रों की कुछ व्यावसायिक मंडलियां पंजाब में जाकर रामलीला करती रहीं हैं। स्थानीय रामलीला कमेटियां उन्हें बनारस आदि स्थानों से आमंत्रित करती हैं। परंतु सच तो यह है कि जनसाधारण को स्थानीय रामलीला में ही अधिक आनंद आता है। इसलिए शनैः शनैः इसका प्रचलन पंजाब में कम होता जा रहा है।

(ख) संगीत-विधिः रामलीला खेलने की यह विधि पंजाब में बहुत प्रचलित है। पंजाब में वास्तव में रामलीला रामायण के आधार पर कम ही खेली जाती है बल्कि यह कुछ संगीत राम नाटकों पर आधारित होती है। यह लीला-नाटक गद्य और पद्य के मिश्रण से तैयार होता है जिसे नौ अथवा दस झांकियों एवं उपझाकियों में विभाजित किया जाता है। इसका आरंभ नवरात्रों के पहले दिन और दशहरे से अगले दिन भरत-मिलाप के बाद भोग डाला जाता है। 20वीं शती के आरंभ से जसवंत सिंह वर्मा दुहानवी का 'राम नाटक' पंजाब की हर रामलीला का आधार रहा है। उर्दू मिश्रित बोली में लिखी गई यह रामलीला पंजाब में बहुत प्रचलित है।

पंजाब के प्रत्येक शहर में अपनी रामलीला कमेटियां क्लब निर्मित हैं। जैसे जलंधर, अमृतसर, लुधियाना, पटियाला, बटाला, पठानकोट, राजपुरा आदि बड़े शहरों में में तो कई-कई रामलीला कमेटियां बनीं हुई हैं।

(ग) सांग विधिः कांगड़ा एवं होशियारपुर जिले में रासधारियों द्वारा रामलीला खेलने का भी आम रिवाज है। यद्यपि धार्मिक विचारों के दर्शक इन्हें इतना पसंद नहीं करते परंतु मनोरंजन की दृष्टि से यह काफी दिलचस्प होती हैं। पेशेवर रासधारिए संगीत की सहायता से गाकर कविता का वार्तालाप रुप पेश करते हैं। इस विधि में झांकी पर बल नहीं दिया जाता। झांकी की तैयारी में लगने वाला समय भी यहां बर्बाद नहीं होता, इसलिए इसे इतना आकर्षक और दिलचस्प बनाया जाता है कि दर्शक एक मिनट के लिए भी उठकर जाने के बारे में नहीं सोच पाता। सांग विधि में साधारण मंच ही प्रयोग किया जाता है।

पंजाब में ऐसी कई रासधारी पार्टियां हैं, जो सांग विधि से रामलीला खेलती हैं। होशियारपुर के रामपाल रासधारिए की पार्टी रामलीला के लिए बहुत प्रसिद्ध है।

सांग एवं नौटंकी: किसी दूसरे व्यक्ति का रुप धारण करना, वेष धारण करना स्वांग या सांग कहलाता है। इस प्रक्रिया में पात्र अपने व्यक्तित्व को पूरी तरह विस्मृत कर, जिस पात्र का अभिनय करता है, उसी के अनुसार व्यवहार भी करता है। प्रो. रमा के अनुसार, "तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी से भारत के 'स्वांग लोकनाट्य' प्रचलन के प्रमाण मिलते हैं। स्वांग का अर्थ कोई वेष धारण करना है। इसे नकल भी कहा जाता है। जायसी, कबीर आदि ने भी स्वांग का उल्लेख किया है। औरंगजेब के समय में भी स्वांग के

समरुप लोकनाट्य' भगत' का प्रचलन था। नौटंकी उसी स्वांग की एक शैली है"।[16] जब किसी राजा, प्रेमी, भक्त, डाकू या असाधारण व्यक्ति के जीवन पर आधारित कहानी को निर्धारित परंपरागत रंग-शैली के अनुसार (सांग, नृत्य एवं छंद की सहायता से) पेशेवर कलाकारों के माध्यम से लोक- मंच पर प्रस्तुत किया जाता है। इसी मनोरंजक तमाशे को सांग नाटक कहा जाता है। पंजाब में इसके कई नाम प्रचलित हैं जैसे खेल, तमाशा, स्वांग, रास, संगीत, नौटंकी आदि। परंतु सांग एवं स्वांग नाम प्राचीन काल से प्रचलन में रहा है। शेष सभी नामों पर स्थानीय प्रभाव रहा है, वस्तुतः तो यह सभी सांग की शाखाएं मानी जा सकती हैं। पंजाब की सांग नाट्य परंपरा सदियों से अलिखित रुप में विद्यमान है। सांग का पहला लिखित रुप सर रिचर्ड टैपंल की पुस्तक "लीजेंड ऑफ दी पंजाब" नामक पुस्तक में मिलता है। यह पुस्तक 1884 ई. में लिखी गई थी'।[17]

सांग पंजाबी बोली की उत्पत्ति के साथ ही अस्तित्व में आ गए थे। धार्मिक रासलीला नाटकों का प्रचलन मुस्लिम शासकों के आगमन से पूर्व भी पंजाब में था। भाटों द्वारा वीर राजाओं की गाथाएं 'वारों' के रुप में प्रचलित थी। नाथ जोगी भी अपनी वाणियों को जोर-जोर से गाकर लोगों को सुनाते थे। होली के अवसर पर फाग-काव्य गाए एवं खेले जाते थे। मुसलमान हिंदू धर्म पर आधारित लीला नाटक नहीं खेलते थे। इसलिए उन्होंनें इन शैलियों पर आधारित लौकिक नाटक खेलने की परंपरा को अपनाया। महमूद गजनवी के हमले के बाद मुसलमान मिरासी एवं तमाशाई पंजाब में आकर बस गए। तत्पश्चात् धार्मिक नाटकों के समानान्तर लौकिक-नाटय्-परंपरा भी अस्तित्व में आई। पंजाबी लोग लौकिक कहानियों को अधिक पसंद करने लगे परिणाम स्वरूप ईरान से आए किस्सा ख्वाह (कथाकार) लौकिक कहानियों को गा-गाकर जनता के सामने प्रस्तुत करने लगे।

हश्मत शाह चिश्ती की शैली में अभिनय करने वाले हुसैन बख्श सांगी सांग नाटक की उत्पत्ति के बारे में एक कहानी सुनाते थे, जिनके अनुसार 'किसी गांव में एक रंगा नामक मिरासी रहता था, जो कि साज़ एवं संगीत में पारंगत था। वह किस्से-कहानियां गा-गाकर पढ़ता था, उसकी आवाज बहुत सुरीली थी। इस मिरासी का एक जुलाहा मित्र था, जो कि हंसमुख तो था पर गाने में अच्छा नहीं था। इसलिए जब रंगा गाता तो जुलाहा मित्र उस गायन के अनुसार अभिनय करनें की कोशिश करता। वह मुंह बिगाड़-बिगाड़ कर यह प्रयास करता जिस कारण लोग उसे बिगाड़िया या बिगड़ा कहने लगे, जो बाद में बिगला बन गया। मिरासी जब भी 'नकल' करते हैं, तो उनमें एक रंगा बनता है, जिसके हाथ में चमोटा होता है। दूसरा जो मजाक करने वाला या हास्यास्पद बात करने वाला व्यक्ति उसमें उपस्थित होते हैं उसे ही बिगला कहते हैं। इसलिए यह संभव हो सकता है कि रंगा और बिगला शब्द सांग नाटक की उत्पत्ति के साथ ही अस्तित्व में आए होंगे। उर्दू भाषा में रंग शब्द का अर्थ तमाशा या नाच भी है'।[18] रंग एवं तमाशा शब्द हिंदी या पंजाबी के नहीं है, यह दोनों फारसी के शब्द हैं, जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है है कि लौकिक सांग परंपरा पर ईरानी तमाशाईयों का प्रभाव है। पंजाब की धार्मिक और लौकिक सांग परंपराएं जो अपने आदि स्वरुप में एक- दूसरे से बिल्कुल मेल नहीं खाती थी, समय बीतने के साथ वह एक-दूसरे बहुत

करीब आ गई। धार्मिक सांग परंपरा को रासधारी सांग और लौकिक सांग परंपरा को नौटंकी सांग का नाम दिया गया।

रासधारी सांग और लीला नाटक का स्वरुप एक ही है, जिसका विश्लेषण विस्तार पूर्वक पूर्व में किया गया है।

सांग नाटक की लौकिक धारा को नौटंकी या सांग तमाशा कहते हैं। इन सांग तमाशा खेलने वालों को लोग तमाशाई, सांगी, नकलची, भांड एवं रासधारिए आदि नामों से पुकारते हैं। एक समय ऐसा भी आया जब लोग इन्हीं को नौटंकी वाले कहने लगे। 'नौटंकी' शब्द कब और कैसे प्रचलन में आया, यह स्पष्ट नहीं है, परंतु यह स्पष्ट है कि यह 'शब्द' पंजाब में बहुत प्रचलित हुआ। डॉ महेंद्र भानावत 'नौटंकी' के नाम के पीछे एक कथा को उत्तरदायी मानते हैं, जो इस प्रकार है:- "पंजाब के एक बादशाह की एक अत्यंत रुपवती एवं कोमलांगी पुत्री थी। वह इतनी नाजुक थी कि नौ टुकड़ों जितना ही आहार ग्रहण करती थी, वह फूलों के समान हल्की और कोमल थी। नौ टुकड़ों जितना आहार ग्रहण करने के कारण उसका नाम ही नौटंकी पड़ गया। एक दिन पंजाब के ही एक युवा को उसकी भाभियों ने ताना मारा कि यदि वह अपने आप को कुछ समझता है तो नौटंकी से विवाह क्यों नहीं कर लेता? यह युवक स्त्रीवेश धारण कर किसी प्रकार राजकुमारी तक पहुंच जाता है। धीरे-धीरे दोनों में मित्रता हो जाती है और दोनों महल में ही प्रेमी-प्रेमिका की तरह रहने लगते हैं लेकिन जब बादशाह को इस बात का पता चलता है तो वह युवक को फांसी की सजा सुना देता है। तब राजकुमारी भी उस युवक के साथ मृत्यु दंड पाने के लिए सामने आ जाती है। अंततः पुत्री के प्रेममवश बादशाह युवक को क्षमा करके उससे नौटंकी की शादी करा देता है"।[19] डॉ गोपीनाथ तिवारी पंजाबी सांग गायक उस्ताद लक्ष्मण को पहला नौटंकी सांग लेखक मानते हैं, जिनका समय 1867 के आसपास का है। जो कि आगे चलकर बहुत प्रसिद्ध हुआ और इस तरह के सांग को 'नौटंकी' कहा जाने लगा।[20] इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि नौटंकी सांग पंजाब की देन है और वहीं से यह अन्य प्रांतों में पहुंचा है। पंजाब की नौटंकी इतनी प्रसिद्ध हुई कि यहां की नौटंकी-तमाशा पार्टियां कानपुर, लखनऊ, दिल्ली तथा अन्य शहरों में जाकर भी अपनी कला का प्रदर्शन करती रही।

महाराष्ट्र का तमाशा भी पंजाब की ही देन है। वर्षों तक मराठों का पीछा करने वाली औरंगजेब की फौज के मनोरंजन के लिए पंजाब से ही नकल एवं नौटंकी वाले गए थे। तमाशे में गायी जाने वाली लावणी वस्तुतः पंजाबी ही है। प्रो. बलवंत गार्गी के अनुसार, "लावणी शब्द ही पंजाबी का है, जिसका अर्थ है 'लाणा' या 'जोड़ना', क्योंकि कई शब्दों को जोड़कर इसे एक विशिष्ट संगीतक रुप दिया जाता है। इस तरह इसका नाम लावणी पड़ गया जो महाराष्ट्र की संगीतक शब्दावली में रच-बस गया।"[21]

पंजाबी सांग नाटकों का कथा संसार बहुत विस्तृत है, जिसे इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है: 1. मिथक सांग नाटक 2. ऐतिहासिक सांग नाटक 3. देसी लोकगाथा सांग नाटक 4. विदेशी लोकगाथा सांग नाटक 5. काल्पनिक गाथा सांग नाटक।

नौटंकी की भांति कुछ अन्य लोकनाटक भी सांग से मिलते- जुलते हैं जिनमें आगरा का 'भगत', राजस्थान का 'ख्याल' और मालवा का 'माच'।

'पंजाब में धार्मिक नृत्य नाटकों अथवा जुलूस-झांकियों की उतनी कट्टर परंपरा नहीं है, जितनी उतर-प्रदेश में रामलीला एवं रासलीला की है बल्कि यहां के निवासियों का रुझान और प्रतिभा प्रेम कहानियों या फक्कड़ाना हंसी मजाक की ओर अधिक प्रतीत होता है। सदियों से यहां नकलची लोगों का मनोरंजन कर रहे हैं। वर्तमान में कुछ वर्ष पूर्व विवाह-शादियों में नकलची की उपस्थिति सामान्य बात थी। पूरी रात अखाड़ा जमता और नकलची अपनी वाक्-कला से लोगों को हँसी से लोट-पोट करते रहते।”[22] पंजाबी शब्दकोश के अनुसार तो नकल शब्द का अर्थ होता है "किसी की तरह करने की क्रिया, सांग या नकल।"[23] भाई काण सिंह नाभा के अनुसार "इसमें किसी नजारे के हुबहू झांकी प्रस्तुत की जाती है।"[24] पर पेशेवर नकलचियों की नकल की कुछ अपनी विशिष्ट ही पहचान होती है, जो उसे लोकनाटक का एक विशिष्ट रुप प्रदान करती है, इस आधार पर उन विशेषताओं की पहचान आवश्यक है।

1. यह शब्द प्रधान होती है अर्थात शब्द-चातुर्य पर जोर रहता है क्योंकि कथा वार्तालाप शैली में अग्रसर होती है।

2. इसमें दो विशेष कलाकार होते हैं- एक शब्दों द्वारा ताना-बाना बुनता है और दूसरा क्षण-भर में उस ताने-बाने को रेज़ा-रेज़ा कर देता है। ताना-बाना बुनने वाले कलाकार को रंगा और बिखेरने वाले को 'बिगला' कहा जाता है। बिगले की उल्टी-सीधी बातों से हास्य-रस की उत्पत्ति होती है, जिससे जनता के बीच हँसी की लहरदौड़ जाती है। इस हास्य को ओर अधिक लुभावना एवं आकर्षक बनाने के लिए रंगा एक चमड़े का चमोटा अपने हाथ में रखता है और आवश्यकता अनुसार बिगले को उससे मारता है। बड़ी से बड़ी नकल को भी यही दो कलाकार खेल सकते हैं।

3. नकल में किसी को स्वांग धरने की आवश्यकता नहीं होती। रंगा साधारण वेशभूषा (कुर्ता आदि) में तथा बिगला केवल एक लंगोटी या पाजामा आदि में ही रहता है। अधिकांशतः वह ऊपर बिना वस्त्रों के या बनियान आदि ही डालता है।

4. नकल में कहानी का प्लॉट सोचा-समझा होता है, जबकि इनकी प्रस्तुति का ढंग बिल्कुल अलग होता है।

5. नकल पांच मिनट की भी हो सकती है और तीन घंटे की भी।

6. नकल के लिए एक खाट जितना स्थान भी पर्याप्त है।

7. इनका कोई एक लेखक नहीं होता बल्कि इनके लिखने की प्रक्रिया सामूहिक है। बार-बार खेलने के कारण इनमें परिष्कार होता रहता है। कच्चे रुप से पक्के रुप (परिष्कृत रुप) तक आने के पश्चात् इन्हें 'पटरी' कहा जाता है, जो इनका अधिक प्रामाणिक रुप माना जाता है।

इन विशेषताओं के आधार पर डॉ अजीत सिंह 'नकल' को कुछ इस तरह परिभाषाबद्ध करते हैं, "किसी व्यवसाय, मनुष्य, पशु, वस्तु अथवा जाति संबंधी कहानी को व्यावसायिक नकलची चमोटे की सहायता से, बिना किसी प्रकार का वेश धारण किए, मसखरी, टिक्चरों, व्यंग्य या वासनामयी वार्तालाप के रुप में मंच पर खेले, उसे नकल कहा जाता है।"[25]

इस प्रकार रुप के आधार पर नकल दो हिस्सों में बांटी जा सकती है:-

कटिक्चरः वह नकल जिसमें एक दृश्य में एक ही तरह का हास्यरस बिखेरा जाए, टिक्चर कहलाती है, जिसे पंजाबी में 'टिचरां' कहा जाता है। यह कम से कम पांच मिनट और अधिक से अधिक दस मिनट की होती है। उसका आरंभ साधारण वार्तालाप से होता है, मध्य में थोड़ा लटकाकर बात की जाती है परंतु अंत बम की तरह फटता है। कटिक्चर के शिखर या अंत के विषय में दर्शकों का अनुमान हमेशा गलत सिद्ध होता है, वहीं से हास्य पैदा होता है।

वर्तमान से चार-पांच दशक पूर्व तक बारातें कई-कई दिन तक ठहरा करती थी। इन अवसरों के लिए बाराती अपने साथ नकलची लेकर आते थे ताकि मनोरंजन भी हो सके और साथ ही साथ कन्या पक्ष पर अपनी संपन्नता का रौब भी गांठा जा सके। परंतु अब यह परंपरा धीरे-धीरे समाप्त प्राय हो चुकी है क्योंकि न तो अब बारातें ही एक रात से ज्यादा ठहरती हैं और न ही इन नकलचियों की आवश्यकता उन्हें महसूस होती है। टिचरां अधिकांशतः वाल्मीकि समाज के मिरासियों द्वारा खेली जाती है, इसके कलाकार बिन बुलाए भी शादी-ब्याह या अन्य खुशी के अवसर पर पहुंच जाते हैं। यह पहले बधाई गीत गाते हैं और फिर 'टिचरां' खेलते हैं। पंजाबी की कुछ प्रसिद्ध टिचरें हैं:- कमरे भर दिते, भूखा रोंदा सी, रब तेनू वी चुके, लफाफे विच, मेरा विआह हुआ तथा बहुत ऊंची थां तो दिता आदि। इस प्रकार टिक्चरों में कोई लंबी-चौड़ी कहानी नहीं होती। किसी अच्छी बात/वस्तु का भुलावा देकर घटिया चीज का नाम ले लिया जाता है, उससे हास्य पैदा होता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है- बिगला कहता है उसने अपने भाई की शादी में बहुत खाए, रंगा मुंह में पानी भरकर बार-बार उससे पूछता है कि क्या खाए रसगुल्ले ? गुलाबजामुन? लड्डू? पेड़े? या सेब? जिस पर बिगला कहता है कि ऐसी घटिया वस्तु तो ऐरे-गैरे लोग खाते हैं। रंगा के बार-बार पूछने पर वह बताता है कि उन्होंने जूते बहुत खाएं। (बहुत खादे) यह सुन दर्शकों में हंसी की लहर दौड़ जाती है।

खपटड़ियांः ऐसी नकल पटड़ी कहलाती है जिसमें दो या दो से अधिक कलाकार हंसी से भरे अलग-अलग दृश्य में प्रदर्शन करते हैं। मुसलमान मिरासी टिक्चरों को नकल नहीं मानते, उनके अनुसार पंजाब में पुरातन समय से 360 पटड़ियां प्रचलित हैं।

पटरी और टिक्चर में काफी अंतर देखा जा सकता है-

1. टिक्चर किसी एक हास्यास्पद बिंदु के आस-पास घूमता है जबकि पटड़ी में स्थान-स्थान पर हास्य पैदा करने के अवसर गढ़े जाते हैं।

2. टिक्चर में कोई कहानी नहीं होती बल्कि केवल शब्द-लालित्य ही चमत्कार करने के लिए पर्याप्त है जबकि पटड़ी में साहित्यिक नाटक की भांति कथा होती है, जो किसी व्यक्ति, कार्य से जुड़ी होती है।

3. एक टिक्चर में केवल दो ही पात्र होते हैं जबकि पटड़ी में पात्रों की संख्या दो से अधिक भी हो सकती है। कभी-कभी दो ही पात्र दो से अधिक पात्रों की भूमिका भी कर लेते हैं।

पंजाब की पटड़ियों के दो रुप प्रचलित हैं:-

(क) दौ हथियां पटरियां: जिसमें दो ही पात्र हों, चाहे उन्हें भूमिका बदल-बदल कर प्रदर्शन करना पड़े, उसे दो हथियां पटरी कहा जाता है। इसमें दो कलाकारों के इलावा और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती। 20वीं शताब्दी से पूर्व पंजाब में केवल यही पटरियां प्रसिद्ध थी।

(ख) बहु-हथियां पटरियां: इन पटरियों में साहित्यिक नाटक की भांति ही प्रत्येक पात्र का अभिनय अलग-अलग अभिनेता करते हैं। इस प्रकार की नकल के लिए नकलचियों का पूरा समूह टोली के रुप में इसे खेलता है। कई स्वांगकारों की टोलियां भी इसे खेलती हैं। इस प्रकार की पटरी में एक से अधिक बिगले और रंगा नाम के अभिनेता होते हैं। कई बार यह दो हथी पटरियों को जोड़ जोड़कर भी भी बना ली जाती हैं। इसमें घटना प्रधान कहानी की सहायता ली जाती है और दृश्य दर्शाने में समस्या अनुभव होती है उसे वार्तालाप अथवा संवाद- विधि द्वारा प्रकट किया जाता है। विषय के आधार पर इन्हें मोटे तौर पर पांच भागों में बांटा गया है: जाति-विषयक, कर्म विषयक, विवाह-शादी विषयक, विशिष्ट व्यक्तित्व विषयक एवं हुबहू सांग अथवा बदनाम वर्ग विषयक।[26]

प्रभाव के आधार पर नकल तीन भागों में बांटी जा सकती है:

सबसे पहले वो पटरियां आती हैं, जिनका संबंध केवल शिक्षित वर्ग से ही होता है। इनमें केवल ज्ञान-ध्यान जैसे विषयों का चयन किया जाता है, जो कि सामान्य जन की समझ से परे होते हैं। इसमें किसी निम्न स्तर के शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता इसलिए श्रोताओं पर इनका सकारात्मक प्रभाव ही पड़ता है।

दूसरी प्रकार की पटरियां आम जनता के बीच खेली जाती हैं, इनमें वैसे तो कोई आपतिजनक बात की नहीं जाती और ऐसी कोई बात होती भी है वह स्त्रियों से छुपाकर किया जाता है। अधिकांश पटरियां इसी वर्ग में आती है।

तीसरी तरह की पटरियां वह है जो स्त्रियों के समक्ष नहीं खेली जा सकती। इनका मंचन शहर अथवा गांव के बाहर किया जाता है। इनमें सारीं विषय-वस्तु वासनामयी बातों पर निर्भर होता है।"[27]

नकल की कोई लिखित परंपरा नहीं प्राप्त होती, इसका विकास तो मौखिक रुप में ही हुआ है। इनके अपने-अपने घराने होते हैं। एक घराने का व्यक्ति किसी दूसरे घराने की नकल नहीं खेल सकता। एक उस्ताद केवल उन्हीं व्यक्तियों को अपनी शार्गिदी में लेता है जो केवल उसी घराने से जुड़ते हैं, जिससे गुरु का संबंध होता है। पंजाब में मुख्यतः आठ घरानों की बात कही जाती है, जिनमें से पांच देश- विभाजन के

समय पाकिस्तान चले गए और तीन अभी भी पंजाब में हैं। विश्व के नाटक का इतिहास बताता है, इसे पहले लिखा जाता है तत्पश्चात् ही इसे खेला जाता है परंतु पंजाबी नकल को लिखने के लिए न तो कागज़ अपेक्षित है और न ही उसे खेलने के लिए किसी विशिष्ट मंच की जरुरत होती है। भारत में कलाओं के मौखिक रुप की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। कई इतिहासकार मानते हैं कि दुनिया का हर पहला नाटक वास्तव में नकल ही तो था। प्रो. नूर इलाही के अनुसार 'ईरान में नाटक को नकल ही कहा जाता है।'[28]

नकल के पश्चात् ही साहित्यिक नाटक का जन्म हुआ होगा। परंतु नाटक ने नकल को समाप्त नहीं किया और नकल भी साहित्यिक नाटक से बिल्कुल अलग रही। अधिकांशतः नकलची अक्षर-ज्ञान से भी वंचित होते हैं, निरक्षर होने के बावजूद भी यह नकल को स्मृति के आधार पर प्रस्तुत करते हैं। पुराने समय में यह किसी धनी व्यक्ति के नौकर होते थे और अपनी हंसी विषयक क्रियाओं से अपने स्वामियों का मनोरंजन करते थे। मुस्लिम शासकों के आगमन के पश्चात् इनका स्वरुप परिष्कृत हुआ। यद्यपि मुस्लिम शासक रंग-तमाशों को गैर- इस्लामिक मानते थे परंतु उन्होंनें नकल को नहीं रोका बल्कि जब वे भारत आए तो उन्हीं के साथ कुछ मिरासी भी आए जो कि हंसी मजाक में पारंगत थे। ग्यारहवीं-बारहवीं सदी में पंजाब में नकल का आम रिवाज हो चुका था। लोग इन्हें खुशी के अवसरों पर विशेष रुप से आमंत्रित करते थे। महाराजा रणजीत के समय में भी यह लोगों का मनोरंजन करने वालों में सबसे आगे थे। अंग्रेजों के आगमन पर एक बार तो नकलों का विकास रुक सा गया परंतु पुनः 1920 में इसका स्वर्णयुग तब आया जब भगतपुर (जलंधर) के एक प्रसिद्ध नकलची दीना ने एक पुरुष को स्त्री-वेश में नचवाया, जिसे लोगों ने बहुत पसंद किया, आगे चलकर तो सभी नकलचियों ने इसे परंपरा रुप में अपना लिया। सन् 1947 तक पंजाब में नकलों का स्वर्णयुग माना जा सकता है। परंतु 1947 के बाद अधिकांश मिरासी पाकिस्तान रवाना हो गए, इसलिए मलंग और हुसैन बख्श नामक नकलचियों ने नकल की एक नई मंडली बनाई, जिसमें इन्होंनें मिरासियों के अतिरिक्त अन्य जातियों के लोगों को भी अपना शार्गिद बनाया, कुछ ही समय में इनकी सफलता से प्रभावित होकर पंजाब में कई नयी टोलियां अस्तित्व में आ गयी। विभाजन के बाद कुछ बुजुर्ग नकलचियों ने भारत में इस लोक-परंपरा को जीवित रखा। यद्यपि आज के युग में इनका महत्व कुछ कम हो गया है। सोशल मीडिया, टी.वी., केबल पर चलने वाले लाफ्टर प्रोग्रामों ने इनका स्थान लेने की बहुत कोशिश की है परंतु हमारी विरासत और परंपरा बहुत मूल्यवान है। इस तथ्य को भारत के प्रत्येक निवासी की तरह पंजाबी समाज भी समझता है। इसलिए वह इन्हें बचाना चाहता है।

पंजाबी समाज भी समझता है। इसलिए वह इन्हें बचाना चाहता है।

गिद्दाः गिद्दा पंजाब का लोकप्रिय नृत्य है, जिसे रास नृत्य का ही एक रुप माना जाता है। 'भरत रास अथवा रासक को उपरुपक मानते हैं, जिसके तीन भेद हैं- ताला रासक, दंड रासक एवं मंडल रासक'[29] डॉ दशरथ ओझा के अनुसार- "ताला रासक गोल घेरे में तालियों के तालानुसार, संगीत के साथ, पैरों की ठसक के साथ खेले जाते थे।"[30] पंजाब का गिद्दा भी लगभग ऐसे ही डाला जाता है। इस प्रकार ताला रास में जब बोलियां और टप्पे शामिल हो गए तो यह पंजाब का गिद्दा और गुजरात का गरबा बन गए।

जिस गोल मंच पर गिद्दा डाला जाता है, उसे घघरी मंच कहते हैं। गिद्दा डालते हुए सभी स्त्रियाँ गोलाकार घेरा बनाकर खड़ी हो जाती हैं। इनमें से कोई स्त्री घेरे में ढोलकी या घड़ा लेकर बैठ जाती हैं। ढोलकी बजती है तब समूह में से कोई एक बोलियां डालती है। बोली डालते समय वह चारों तरफ घूमती है ताकि घेरे में खड़ी प्रत्येक स्त्री उसे देख सके।[31] जब बोली का अंतिम टप्पा गाया जाता है तो सभी स्त्रियां उसे मिलकर गाती हैं, दो स्त्रियां नृत्य करती हैं, शेष सभी तालियों को एक खास धुन में बजाती हैं। नयी बोली के साथ ही नृत्य करने वाली स्त्रियों की जोड़ी भी बदलती रहती है।

गिद्दा नाटक में पुरुष का पार्ट भी स्त्रियां ही करती हैं। यद्यपि इसमें प्रयुक्त कहानी बहुत ही साधारण स्तर की होती है परंतु इस साधारण सी कहानी का प्रस्तुतीकरण अत्यंत रोचक और आकर्षक होता है कि यह यादगार बन जाता है। सांग, तमाशा आदि की भांति इसमें राजा, रानी, चोर, डाकू आदि की कहानियां नहीं होती इसमें मुख्य पात्र सास-बहू, देवरानी जेठानी, देवर-भाभी, दूल्हा-दुल्हन आदि होते हैं।

गिद्दा नाटक किसी पुस्तक में नहीं छपे होते, इन्हें तो मिरासिनें अथवा डूमनियां मौखिक परंपरा द्वारा ही जीवित रखती हैं। डॉ अजीत सिंह के अनुसार, "गिद्दा नाटक लोकनाटक की ऐसी श्रेणी है जिसमें सांग, नृत्य, संगीत और काव्य का सुमेल होता है। यदि इसे केवल स्त्रियों का नाटक कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नही होगी।"[32]

गिद्दा नाटक की रंग-शैली भी बिल्कुल अलग और विशिष्ट है। यह न तो किसी कथाकार की कथानुसार चलते हैं और न ही किसी राग के अनुसार बल्कि गिद्दे का नृत्य तो स्वयं प्रस्फुटित एवं कविता के बोल फुव्वारे की भांति निकलते जाते हैं। इसका कोई विधान-विशेष तो नहीं पर फिर भी यह अनुशासनहीन अथवा नियम के विरुद्ध नहीं जाते। कहानी छोटी हो या बड़ी खेल-विधि एक ही रहती है।

पंजाब के प्रचलित गिद्दा नाटक को हम तीन भागों में बांट सकते हैं-

(क) शादी-विवाह से संबंधितः यह गिद्दा नाटक विवाह, सगाई, मुंडन आदि के शुभ अवसरों पर खेले जाते हैं। पुराने समय पर बारात छः सात दिन तक रोकी जाती थी, औरतें बारात के साथ नहीं जाती थी, इसलिए पीछे घर पर रह गई स्त्रियां, जिनमें दूल्हे की बहनें, भाभियां, चाचियां आदि सभी मिलकर गिद्दा डालती और सांग खेलती। यह सांग अधिकांशतः विवाह संबंधित ही होते हैं। थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ यह गिद्दा नाटक पूरे पंजाब में खेले जाते हैं। इनमें से कुछ प्रसिद्ध नाटकों के नाम इस प्रकार हैं: 1. बलल्ली सोहरे चली 2. नी बुड्ढा चढ़िया घोड़ी 3. जट-जट्टी 4. ढोला मेरा जींदा रहे आदि।

(ख) घरेलू रिश्तों से संबंधितः शादियों से संबंधित गिद्दा नाटक खेलने में काफी समय लगता है, जिनके लिए विशिष्ट अभ्यास में पारंगत स्त्रियां इनमें अभिनय करती हैं। हर गांव में मिरासिनें इन्हें प्रमुख रुप से खेलती हैं परंतु घरेलू गिद्दा नाटक आकार में छोटे और हास्य- रस प्रधान होते हैं। इन्हें पंजाबी में घरोगी गिद्दा कहते हैं। घरोगी रिश्ते वाले गिद्दा नाटकों में से कुछ प्रसिद्ध है:- 1. ससे मैं नहीं वसना 2. हाय हाय नी मेरी सौंकन 3. ननॉन-भरजाई आदि।

(ग) अश्लील इश्क कथाएं: गिद्दा नाटकों में पुरुष का प्रवेश नहीं होता। स्त्रियां ही इनमें नृत्य करती हैं और वहीं इसकी दर्शक भी होती हैं। शादी-विवाह के अवसरों पर यूं भी मस्ती भरा माहौल होता है, इसलिए अश्लील कथाएं भी यह गा-गाकर प्रसन्न होती हैं। ऐसे नाटकों में प्रसिद्ध है: 1. माही मेरा लूण घोटणा 2. मैं खड़ी बोड़ दे थले आदि।

इस तरह के नाटकों में अश्लीलता पागलपन की हद तक बढ़ जाती है। दो स्त्रियां एक पुरुष और एक स्त्री के रुप में अभिनय करते हैं। इस तरह का अभिनय करते हुए स्त्रियां किसी प्रकार की झिसक अनुभव नहीं करती बल्कि वे पूरे उत्साह से इसमें भाग लेती हैं। भारतीय समाज में स्त्रियों को घर की चारदीवारी में रखे जाने का प्रचलन रहा है। समाज का विभाजन ही इस ढंग से किया गया था कि स्त्री घर संभालेगी और पुरुष बाहर का काम। ऐसे परिवेश में जब स्त्रियों को पुरुषों के अधीन ही जीवन बिताना होता था, तब गिद्दा जैसे नाटक उनकी स्व-अभिव्यक्ति का सुंदर माध्यम बनें। जिन्होंनें उनका मनोरंजन तो किया ही साथ ही विरेचन भी किया। यद्यपि आज इस तरह की बंदिशें स्त्री-समाज को उतनी नहीं झेलनी पड़ती परंतु पंजाब की हर स्त्री के लिए गिद्दा उतना ही प्रिय है, जितना पूर्व में रहा था। यद्यपि यह कहीं पुस्तकाकार रुप में नहीं मिलते पर वर्तमान संचार-साधनों जैसे यू-ट्यूब आदि ने इनकी लोकप्रियता को और भी अधिक बढ़ा दिया है, परिणाम स्वरूप आज गिद्दा न केवल पंजाब बल्कि संपूर्ण भारत की पहचान बन चुका है। शिक्षा-संस्थानों में होने वाली गिद्दा- प्रतियोगिताओं ने भी इस लोकनाटक को घर की चारदीवारी से बाहर निकाल उन्मुक्त करके विकास मार्ग पर अग्रसर कर दिया है। अंततः कहा जा सकता है कि पंजाब का लोकनाट्य परंपरा का वर्तमान में सबसे जीवंत और विकसित नाट्य रुप यही है। जिसमें इसकी बोलियों का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। कहा जा सकता है कि पंजाब का गिद्दा संगीत, नृत्य, अभिनय, बोलियों और स्त्रीमन से लबरेज एक सुंदर पैकेज है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जो लोग यह मानते हैं कि आधुनिकता की लहर ने लोकनाट्य को ग्रस लिया है, उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि जब तक समाज का मुख्य तंतु "लोक" जिंदा है लोक-कलाएं नहीं मर सकती। हाँ, यह अवश्य है कि उनके रुप परिवर्तित हो सकते हैं। परिवर्तन सृष्टि का नियम है, उसे अस्वीकार करके विकास का मार्ग अवरुद्ध ही होगा। समय के साथ संचार माध्यम हमारे जीवन का अंग बन गए हैं, इसलिए उनका प्रभाव लोक-कलाओं पर पड़ रहा है, तो न ही यह निराशा का विषय है और न ही विरोध का। सकारात्मक दृष्टि से देखें तो यह इन कलाओं के विकास में सहयोग ही देंगे। यही कारण है कि रुप बदल-बदल कर इनके प्रयोग कई कलाकार कर रहे हैं, जैसे बलवंत गार्गी के अनुसार, "पंजाबी में शीला भाटिया और स्नेह लता सानियाल ने लोक-धुनों एवं लोकगाथाओं को मंच पर गीती-नाटकों के रुप में प्रस्तुत किया... दोनों ने लोकनाटकों के रुपों को सामने रखकर यह गीती नाटक रचे एवं खेले।"33 कहा जा सकता है कि नाटक की विकास-यात्रा की सफलता में लोक-नाटकों की कलात्मकता का भी महत्वपूर्ण योगदान है। वास्तव में "लोक-नाटक वर्तमान को अतीत से जोड़ता है। यह जीवन के आसुओं, हास्य, रस्मों-

रिवाजों, भावनाओं और सामाजिक परिस्थितियों का रंगीन प्रदर्शन है। इसमें दार्शनिकता है, मनोरंजन है एवं दर्द है, जिसमें भविष्य के नाटक के विकास की संभावनाएं निहित हैं"।34

संदर्भ-सूचीः

1. लोकयान और मध्यकालीन पंजाबी साहित्य डॉ करनैल सिंह खिंद-(पेज 18)

2. लोकधर्मा नाट्य परंपरा- डॉ श्यामपरमार (पेज 30-31)

3. लोक साहित्य की भूमिका- डॉ कृष्ण देव उपाध्याय (पेज 140)

4. रंग मंच और नाटक की भूमिका डॉ लक्ष्मीनारायण लाल (पेज 40)

5. लोक नाट परंपरा-डॉ अजीत सिंह औलख (पेज 11-12)

6. लोकनाटक-डॉ बलवंत गार्गी- (पेज 118)

7. पंजाबी नाटक का इतिहास (पहला भाग)-डॉ गुरुदयाल सिंह फल - (पेज 126)

8. गुरुनानक और लोक प्रवाह डॉ सोहिंदर सिंह बेदी (पेज 14)

9.लोक नाट परंपरा-डॉ अजीत सिंह औलख (पेज 26)

10. Type of Sanskrit Drama - डॉ डी. आर. मक्कड़ (पेज 143)

11. हिंदी नाटक उद्भव और विकास डॉ दशरथ ओझा (पेज 74)

12. गुरु शब्द रत्नाकर, महान कोश डॉ भाई काण सिंह नाभा (पेज 102)

13. हिंदी रंगमंच डॉ रमा (पेज 64)]

14. लोक नाट परंपरा - डॉ अजीत सिंह औलख (पेज 32)

15. रामचरितमानस (भूमिका) प्रकाशन नागरी प्रचारिण सभा, वाराणसी - (पेज 2)

16. हिंदी रंगमंच-डॉ रमा (पेज 69)

17. लोक नाट परंपरा-डॉ अजीत सिंह औलख (पेज 43)

18. उर्दू पंजाबी हिंदी कोश-भाषा विभाग पंजाब (पेज 730)

19. लोकनाटक परंपरा और प्रवृत्तियां डॉ महेंद्र भानावत (पेज 407)

20. भारतेंदुकालीन नाटक साहित्य-डॉ गोपीनाथ तिवारी - (पेज 248)

21. लोक नाटक - डॉ बलवंत गार्गी - (पेज 86)

22. लोक नाटक - डॉ बलवंत गार्गी (पेज 178)

23. पंजाबी शब्दकोश (पेज 112)

24. गुरुशब्द रत्नाकर महानकोश- भाई काण सिंह नाभा (पेज 677)

25. लोक नाट परंपरा डॉ अजीत सिंह ओलख (पेज 84)

26. लोक नाट परंपरा डॉ अजीत सिंह औलख (पेज 86-90)

27. लोक नाट परंपरा डॉ अजीत सिंह औलख (पेज 100)

28. नाटक सागर (पेज 7)

29. हिंदी नाट्य साहित्य और रंगमंच की मीमांसा- चंद्रप्रकाश सिंह- (पेज 110)

30. रास औररासान्वय काव्य डॉ दशरथ ओझा (पेज 9)

31. लोक नाच - जुगिंदर सिंह (पेज 119)

32. लोक नाट परंपरा डॉ अजीत सिंह औलख (पेज 124)

33. लोकनाटक - डॉ बलवंत गार्गी (पेज 194)

34. लोकनाटक-डॉ बलवंत गार्गी (पेज 196)

- डॉ. योजना कालिया

सह आचार्य, हिन्दी विभाग, विवेकानंद महाविद्यालय,

दिल्ली विश्वविद्यालय